कोलम्बिया फाउँडेशन सी० सै० स्कूल
डी ब्लॉक विकासपुरी नई दिल्ली 110 018

संस्कृत-श्लोका: (कक्षा नवम् - दशम्)

1. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि
(अध्याय 2//47//)

अर्थ → श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान ने अर्जुन को उपदेश दिया कि तुम्हें अपना कर्म (कर्तव्य) करने का अधिकार है, किन्तु कर्म के फलों के तुम अधिकारी नहीं हो। तुम न तो कभी अपने आपको अपने कर्मों के फलों का कारण मानो, न ही कर्म न करने में कभी आसक्त होओ।

अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर के द्वारा जो कर्म करने को दिया जाता है उसे फल की चिन्ता न किए हुए उसे पूर्ण रूप से तन्मय होकर करना चाहिए।

2. सुखदु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥
(2/38)

अर्थ → भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि तुम सुख या दुःख, हानि या लाभ, विजय या पराजय का विचार किये बिना युद्ध के लिए युद्ध करो। ऐसा करने से तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा। दिव्य-चेतना तो यही होगी कि हर कार्य को ईश्वर के निमित्त किया जाए, अतः भौतिक कार्यों का कोई बन्धन (फल) नहीं होता। जो इन्द्रियप्राप्ति के लिए कर्म करता है उसे अच्छे या बुरे फल प्राप्त होते हैं, किन्तु जो ईश्वर के कार्यों में अपने आपको समर्पित कर देता है, वह सामान्य कर्म करने वाले के समान किसी का कृतज्ञ या ऋणी नहीं होता।

3. वासाँसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(२/२२)

अर्थ → जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने तथा व्यर्थ के शरीरों को त्याग कर नवीन भौतिक शरीर धारण करता है।

यहाँ भगवान ने अर्जुन को उपदेश दिया कि वह अपने पितामह तथा गुरु के देहान्तरण पर शोक प्रकट न करे अपितु उसे इस धर्म-युद्ध में उनके शरीरों का वध करने में प्रसन्न होना चाहिए, जिससे वे सब विभिन्न शारीरिक कर्म-फलों से तुरन्त मुक्त हो जाएँ।

---

4. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

(2/23)

अर्थ → यह आत्मा न तो कभी किसी शस्त्र द्वारा खण्ड-खण्ड किया जा सकता है, न अग्नि द्वारा जलाया जा सकता है, न जल द्वारा भिगोया या वायु द्वारा सुखाया जा सकता है।

---

5. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(4/7)

अर्थ → हे भारतवंशी ! जब भी और जहाँ भी धर्म का पतन होता है और अधर्म की प्रधानता होने लगती है, तब - तब मैं अवतार लेता हूँ।

अर्थात् श्रीमद्भागवत में बताया गया है कि ऐसे नियम भगवान के नियम हैं। केवल भगवान ही किसी धर्म की व्यवस्था कर सकते हैं। वे कहीं भी और किसी भी काल में इच्छा होने पर प्रकट हो सकते हैं। उनका उद्देश्य एक ही रहता है - लोगों को ईशभावनाभावित करना तथा धार्मिक नियमों के प्रति आज्ञाकारी बनाना। जिससे संसार में धर्म की प्रधानता बनी रहे।

---

6. अभ्यासयोग युक्तेन चेतसा नान्यगामिन
परमं पुरुषं दिव्य याति पार्थानुचिन्तयन ॥

(अध्याय 8/18)

प्रस्तुत श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अपने स्मरण किए जाने की महत्ता पर बल देते हैं। महामंत्र हरे कृष्ण का जाप करने से कृष्ण की स्मृति हो जाती है। भगवान के शब्दोच्चार (ध्वनि) के जाप तथा श्रवण के अभ्यास से मनुष्य शुद्ध हो जाता है।

7. यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥
(18/78)

अर्थ → प्रस्तुत श्लोक में बताया गया है कि जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं और जहाँ परम धनुर्धर अर्जुन है, वहीं ऐश्वर्य, विजय, अलौकिक शक्ति तथा नीति भी निश्चित रूप से रहती है। ऐसा मेरा मत है। मेरा मानना है कि जहाँ कृष्ण तथा अर्जुन उपस्थित है वहीं सम्पूर्ण श्री होगी। अर्थात् जिसका साथ ईश्वर देते हैं वह सम्पूर्ण जीवन सफलता की ओर अग्रसर होता रहता है।

8. बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥
(7/10)

अर्थ → कृष्ण समस्त पदार्थों के बीज हैं। कई प्रकार के चर तथा अचर जीव हैं। पक्षी, पशु, मनुष्य तथा अन्य सजीव प्राणी चर हैं। पेड़-पौधे अचर हैं। किन्तु इन सबके जीवन के बीजस्वरूप कृष्ण हैं। कृष्ण समस्त वस्तुओं के उद्गम हैं। वे मूल हैं। जिस

प्रकार मूल सारे वृक्ष का पालन करता है। उसी
प्रकार कृष्ण मूल होने के कारण इस जगत्
के समस्त प्राणियों का पालन करते हैं।

9. चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

अर्थ → मन बहुत चञ्चल है। इस व्यवहार-जगत्
में जहाँ मनुष्य को अनेक विरोधी तत्वों से संघर्ष
करना होता है, उसके लिए मन को वश में
कर पाना अत्यंत कठिन हो जाता है। जिस
प्रकार अच्छी से अच्छी दवा द्वारा कभी-कभी
रोग वश में नहीं हो पाता। ऐसे प्रबल मन को
योगाभ्यास द्वारा वश में किया जा सकता है।
अतः हमें मन को वश में करके जीवन को
सफल बनाना चाहिए।

10. काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥
(3/37)

अर्थ → प्रस्तुत श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण क्रोध
को इस संसार का सर्वभक्षी पापी शत्रु बताते
हैं। ईश्वर प्रेम का भाव काम (विषय-वासना)
में उसी तरह बदल जाता है जिस तरह [illegible]

के संसर्ग से दूध - दही में बदल जाता है और जब काम की संतुष्टि नहीं होती तो यह क्रोध में परिणत हो जाता है। क्रोध मोह में और मोह इस संसार में निरन्तर बना रहता है। अतः जीवात्मा का सबसे बड़ा शत्रु काम है और यह काम ही है जो विशुद्ध जीवात्मा को इस संसार में फँसे रहने के लिए प्रेरित करता है।